साधारण जीवन में राज के नियमानुसार कर्म किया जाता है; उसी भाँति, श्रीभगवान् की आज्ञा के अनुसार ही कर्म करना है। ये वैदिक-विधान स्वयं श्रीभगवान् के निःश्वास से प्रकट हुए हैं। प्रसिद्ध कथन है: **अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः साम वेदोऽथर्वांगिरसः।** 'ऋक्', 'साम', 'यजुः' और 'अथर्व'—ये चारों वेद श्रीभगवान् के निःश्वास सहित प्रकट हुए हैं। सर्वशक्तिमौन् श्रीभगवान् निःश्वास द्वारा भी बोल सकते हैं। ब्रह्मसंहिता से प्रमाणित है कि श्रीभगवान् अपने किसी भी अंग से अन्य सब अगों की क्रिया करने की सामर्थ्य रखते है, अर्थात् वे अपने निःश्वास से प्रवचन तथा दृष्टिमात्र से गर्भाधान कर सकते हैं। वास्तव में कहा जाता है कि उन्होंने माया पर दृष्टिनिपात करके उसमें सब जीवों का गर्भाधान किया और इसके अनन्तर वैदिक ज्ञान के रूप में बद्धजीवों के लिए भगवद्धाम के मार्ग का निर्देश किया। हमें यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि मायाबद्ध जीव इन्द्रियतृप्ति के लिए आतुर हैं। परन्तु वैदिक निर्देश इस विधि से निर्मित हैं कि अपनी विकृत कामनाओं की पूर्ति से मिलने वाले मिथ्या आनन्द को भोगकर जीव अन्त में भगवद्धाम को फिर प्राप्त हो जाय। इस प्रकार बद्ध जीवों को मुक्ति का सुअवसर दिया गया है। अतः बद्धजीव को यज्ञक्रिया का अभ्यास करने के लिए कृष्णभावनाभावित हो जाना चाहिए। जो वैदिक-विधान का पालन नहीं कर सकते, वे मनुष्य भी कृष्णभावना को अंगीकार कर सकते हैं। कृष्णभावना से सम्पूर्ण वैदिक यज्ञकर्मों का प्रयोजन सिद्ध हो जायगा।

8/3

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।१६।।

एवम्=इस प्रकार नियत; **प्रवर्तितम्**=वेदों द्वारा चलाये गये; **चक्रम्**=चक्र के; **न अनुवर्तयति**=अनुसार आचरण नहीं करता; **इह**=इस जीवन में; **यः**=जो; **अघायुः**=पाप पूर्ण जीवन वाला; **इन्द्रियारामः**=विषयभोग-परायण; **मोघम्**=व्यर्थ; **पार्थ**=हे पार्थ (अर्जुन); **सः**=वह; **जीवति**=जीता है।

अनुवाद

हे अर्जुन! जो मनुष्य वेद की इस यज्ञ-व्यवस्था का अनुसरण नहीं करता, उसका जीवन निस्सन्देह पापमय है, क्योंकि जो इन्द्रियतृप्ति के परायण रहता है वह व्यर्थ ही जीता है।।१६।।

तात्पर्य

इस श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण ने धन को ही सब कुछ मानने वाली उस विचारधारा का तिरस्कार किया है, जिसके अनुसार कठोर परिश्रम के द्वारा इन्द्रियतृप्ति में रमण करना उत्तम समझा जाता है। अतएव जो इस प्राकृत-जगत् को भोगना चाहते हैं, उनके लिए ही पूर्वोक्त यज्ञचक्र का अनुसरण करना सर्वथा आवश्यक है। इस विधान की अवज्ञा करने वाला महान् विपत्ति को आमन्त्रित कर रहा है, क्योंकि वह उत्तरोत्तर